जमाअत इस्लामी
का
सन्देश

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह रहमान रहीम के नाम से'

९-१० मई, १९४७ ई० को दारुल इस्लाम पठान कोट (पूर्वी पंजाब) में जमाअत का जो इज्तिमा हुआ था, हमें दुख है कि न सिर्फ़ उसकी रिपोर्ट पूर्वी पंजाब के भयानक साम्प्रदायिक दंगों की भेंट चढ़ गई, बल्कि उसके मसौदों का एक बड़ा हिस्सा भी दीना नगर में नष्ट हो गया। अब सौभाग्यवश कुछ काग़ज़ों में मेरी दो तक़रीरों के मसौदे मिल गये हैं, जिन्हें इज्तिमा के बाद लिख लिया गया था। पहली तक़रीर उद्घाटन सम्बन्धी थी। इसमें जमाअत इस्लामी के मक़सद की तशरीह की गई थी। दूसरी तक़रीर आम जलसे (आम सभा) में की गई थी और उसमें 'बनाव और बिगाड़' से मुताल्लिक़ अल्लाह की सुन्नत (नियम) को तफ़सील से बयान किया गया था। हालांकि ये दोनों तक़रीरें पुरानी हो चुकी हैं, फिर भी इनका विषय पुराना नहीं हुआ है। उम्मीद है कि इनका अध्ययन पाठकों के लिए फ़ायदेमंद साबित होगा।

हमारी यह जमाअत जिस मक़्सद को लेकर उठी है वह यह है कि दुनिया में और प्रारंभतः इस देश में एक ऐसे समाज का गठन किया जाये जो इस्लाम के हक़ीक़ी उसूलों पर, शऊर और ख़ुलूस के साथ ख़ुद चले, दुनिया के सामने कथनी और करनी से उसकी सही नुमाइन्दगी करे और जहां जहां भी उसे मौक़ा मिले वहां के विचार, व्यवहार, तहज़ीब, समाज, सियासत और अर्थव्यवस्था को मौजूदा ग़ैरख़ुदापरस्ताना और माद्दी बुनियादों से हटा कर सच्ची ख़ुदापरस्ती यानी तौहीद की बुनियाद पर क़ायम कर दे। इस जमाअत को यह यक़ीन है कि मौजूदा तहज़ीब और उसका पूरा निज़ामे-ज़िन्दगी जिन उसूलों पर टिका हुआ है वे पूरी तरह बिगड़े हुए और फ़ासिद हैं और अगर दुनिया का इन्तिज़ाम इन्हीं उसूलों पर चलता रहा, तो उसे बड़े ख़तरनाक नतीजों का सामना करना

होगा। इसके जो नतीजे अब तक निकल चुके है, वे भी कुछ कम ख़तरनाक नहीं है, लेकिन उन नतीजों के ख़तरे से इनका कोई जोड़ नहीं, जिस की ओर यह तहज़ीब दुनिया को लिए जा रही है, और यह ज़ाहिर है कि हम इस दुनिया से कहीं बाहर नहीं जी रहे हैं बल्कि इसके भीतर ही सांस ले रहे हैं। इसलिए यदि हम इन उसूलों को फ़ासिद और ख़तरनाक समझते हुए भी स्वीकारोक्ति के साथ इसी व्यवस्था के अन्तर्गत ज़िन्दगी गुज़ारते चले जायें और मौजूदा तहज़ीब के पश्चिमी और उनके पूर्वी अनुयायियों की अगुआयी में आंखें बन्द कर के चलते रहें तो जिस तबाही के गड्ढे में यह दुनिया गिरेगी उसी में इसके साथ साथ हम भी जा गिरेंगे और हमारा भी वही बुरा अंजाम होगा। हम पूरे विवेक के साथ यह जानते हैं और अपने इस इल्म पर यक़ीन रखते हैं कि अल्लाह ने इन्सान की रहनुमाई के लिए अपने पैग़म्बरों के ज़रिये जो हिदायतें नाज़िल की हैं उसी की पैरवी में हमारी और सारी इन्सानियत की भलाई निहित है और इन्सानी ज़िन्दगी का पूरा निज़ाम उसी वक़्त सही चल सकता है, जबकि उसे उन उसूलों पर क़ायम किया जाय जो इन्सानों के पैदा करने वाले की दी हुई उस हिदायत में हम को मिलते हैं। हमारे इस इल्म व यक़ीन से ख़ुद-ब-ख़ुद हमारा यह कर्तव्य हो जाता है और यही कर्तव्य अल्लाह ने भी अपने फ़रमांबरदार बन्दों का ठहराया है कि हम उस निज़ामे-ज़िन्दगी के ख़िलाफ़ कोशिश करें जो फ़ासिद उसूलों पर चल रही हैं, और उस सालेह (बेहतरीन) निज़ाम को क़ायम करने के लिए कोशिश करें जो ख़ुदा की हिदायत और उसके उसूलों पर क़ायम हो। यह कोशिश हमें सिर्फ़ इसी लिए नहीं करनी चाहिएं कि दुनिया की भलाई का हम से यह तक़ाज़ा है। नहीं, हम ख़ुद अपना भी बहुत बुरा चाहने वाले होंगे अगर इस कोशिश में हम अपनी जान न लड़ायें, क्योंकि जब सामूहिक जीवन का पूरा निज़ाम फ़ासिद उसूलों पर चल रहा हो, जब बातिल नज़रिए और विचार पूरी

दुनिया पर छाये हुए हों, जब विचारों को ढालने और अख़लाक़ और चरित्र बनाने की आलमगीर ताक़तों पर बिगड़ी हुई शिक्षा प्रणाली गुमराह करने वाले साहित्य, उपद्रवकारी और साज़िशी पत्रकारिता, शरारत और शैतानियत से भरे हुए रेडियो और सिनेमा का प्रभुत्व (ग़ल्बा) हो, जब रोज़ी के तमाम साधनों पर एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था का क़ब्ज़ा हो जो हराम व हलाल के बन्धनों से अपरिचित है, जब संस्कृति और सभ्यता को रूप देने और उसको एक ख़ास राह पर ले जाने वाली तमाम ताक़तें ऐसे क़ानूनों और ऐसे क़ानून बनाने वालों के हाथ में हों, जो अख़्लाक़ और तहज़ीब के सरासर माद्दापरस्ताना तसव्वुरों पर क़ायम हैं, जब क़ौमों का नेतृत्व और दुनिया के इन्तज़ाम की पूरी बागडोर उन नेताओं और शासकों के हाथ में हो जो ख़ुदा के ख़ौफ़ से ख़ाली और उसकी प्रसन्नता प्राप्ति से बेपरवाह हैं और अपने किसी मामले में भी यह पूछने की ज़रूरत नहीं समझते कि उनके पैदा करने वाले की हिदायत इसके बारे में क्या है, तो ऐसे निज़ाम की आलमगीर पकड़ में रहते हुए हम ख़ुद अपने आप को इसके बुरे नतीजों से कब तक बचा सकते हैं। यह निज़ाम जिस जहन्नम की ओर जा रहा है, उसकी ओर वह दुनिया के साथ हमें भी घसीटे लिए जा रहा है। अगर हम इस की रोकथाम न करें और इसको बदलने की कोशिश में ऐड़ी-चोटी का ज़ोर न लगायें तो यह हमारी और हमारी आने वाली नस्लों की दुनिया को बर्बाद और आख़िरत को तबाह करके छोड़ेगा।

इसलिए दुनिया के सुधार ही के लिए नहीं, बल्कि ख़ुद अपने बचाव के लिए भी हमारा यह फ़र्ज़ हो जाता है – और यह तमाम फ़र्ज़ों से बड़ा फ़र्ज़ है कि हम जिस निज़ामे ज़िन्दगी को पूरे शऊर के साथ फ़ासिद और घातक समझते हैं, उसे बदलने की कोशिश करें और जिस निज़ाम के सही, और भलाई व निजात के एकमात्र ज़रिया होने पर यक़ीन रखते हैं, उसे अमली तौर पर जारी और लागू करने की कोशिश करें।

इस संक्षिप्त व्याख्या से आप पर यह बात वाज़ेह हो गई होगी कि हमारा असल मक़सद मौजूदा निज़ाम के चलाने वाले हाथों को बदलना नहीं है बल्कि ख़ुद निज़ाम (व्यवस्था) को बदलना है। हमारी कोशिशों का लक्ष्य यह नहीं है कि निज़ाम तो यही रहे, और इन्हीं उसूलों पर चलता रहे पर इसको पश्चिम वाले न चलायें बल्कि पूर्वी लोग चलायें, या अंग्रेज़ न चलायें, भारतीय चलायें, या हिन्दू न चलायें, "मुसलमान" चलायें। हमारी नज़र में केवल हाथों के बदलजाने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, सुअर तो बहरहाल सुअर ही है और मूलरूप से नायक है, भले ही उसे ग़ैर-मुस्लिम बावरची पकाये या मुसलमान बावरची , बल्कि मुसलमान बावरची का सुअर पकाना और भी ज़्यादा अफ़सोसनाक है और उसका यह अमल लोगों को गुमराह कर सकता है। अल्लाह के बहुत से बन्दे यहां तक कि अच्छे ख़ासे परहेज़गार भी उस ज़ालिम के हाथ का पकाया हुआ सुअर इस इत्मीनान पर खा जायेंगे कि इसे मुसलमान ने पकाया है, और अगर इस पकने-पकाने के बीच में चमचे की हर गर्दिश पर वह ऊंची आवाज़ से बिस्मिल्लाह पढ़ दिया करे और उसके लगाये हुए दस्तरख़्वान पर मुसलमानों को ग़ैर-मुस्लिम दस्तरख़्वान के मुक़ाबले में खान-पान की ज़्यादा सहूलियत और आज़ादी हासिल हो, और खाने के आस-पास कुछ ऐसे ज़रूरी साज़ व सामान भी लगा दिये जायें जो आमतौर से इस्लामी संस्कृति का अंग समझे जाते हैं, तो इस तरह की नुमाइशी बातें उस हराम खाने को क़बूल कर लेने के लिए कोई सिफ़ारिश न होनी चाहिए, बल्कि यह लुभावने तौर तरीक़े इस मामले को और भी ज़्यादा ख़तरनाक बना देते हैं। इसलिए हम किसी ऐसी ज़ाहिरी तब्दीली से न ख़ुद संतुष्ट हो सकते हैं और न किसी को संतुष्ट होते देख सकते हैं। जिसमें यह बिगड़ा हुआ निज़ाम ज्यों का त्यों बना रहे और सिर्फ़ उसके चलाने वाले हाथ बदल जायें। हमारी नज़र हाथों पर नहीं बल्कि उन उसूलों पर है जिन पर ज़िन्दगी का निज़ाम

चलाया जाता है। वे उसूल फ़ासिद हों, तो उनके ख़िलाफ़ हम जद्दोजेहद जारी रखेंगे और उन्हें सालेह उसूलों से बदलने की कोशिश करेंगे।

यह तो है हमारा मक़्सद ! अब मैं चाहता हूं कि आप साफ़ तौर से समझ लें कि मौजूदा तहज़ीब के वे उसूल क्या हैं, जिन को हम मिटाना चाहते हैं, और उनकी जगह पर वे दूसरे उसूल क्या है, जिन को हम लागू और जारी करना चाहते हैं।

मौजूदा तहज़ीब जिसपर आज दुनिया की पूरी वैचारिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था चल रही है, दरअसल में तीन बुनियादी उसूलों पर क़ायम है।

(१) **Secularism** – यानी धर्म-निर्पेक्षता या भौतिकवाद।

(२) **Nationalism** – यानी राष्ट्रवाद (क़ौमपरस्ती)।

(३) **Democracy** – यानी लोकतन्त्र (हाकिमीयते जमहूर)।

इन में से पहले उसूल यानी अधर्मवाद का मतलब यह है कि ख़ुदा, उसकी हिदायत और उसकी इबादत के मामले को एक-एक व्यक्ति की निजी हैसियत तक सीमित कर दिया जाए। निजी ज़िन्दगी के इस तंग दायरे के अलावा दुनिया के तमाम मामलों की हम ख़ालिस दुनियावी नुक़्त-ए-नज़र से अपनी सूझ-बूझ के मुताबिक़ ख़ुद जिस तरह चाहें तय कर लें। इन सब मामलों में यह सवाल उठना ही न चाहिए कि ख़ुदा क्या कहता है, उसकी हिदायतें क्या हैं और उसकी भेजी हुई किताबों में क्या लिखा है ? शुरू में पश्चिम वालों ने यह तरीक़ा ईसाई पादरियों के उस मनगढ़न्त धर्मशास्त्र (Theology) से खिन्न हो कर अपनाया था, जो उनके पैरों की बेड़ी बनकर रह गया था। लेकिन धीरे-धीरे यह तर्ज़े अमल ज़िन्दगी का एक स्थायी नज़रिया बन गया और नयी तहज़ीब का पहला स्तंभ ठहरा। आपने अकसर यह वाक्य सुना होगा कि :–"धर्म ख़ुदा और इन्सान के बीच एक प्राइवेट मामला है।"

यह छोटा सा जुमला हक़ीक़त में मौजूदा तहज़ीब का कलिमा या

मूलमंत्र है। इस की तश्रीह यह है कि अगर किसी का ज़मीर (अन्तर्रात्मा) गवाही देता है कि ख़ुदा है और उसकी इबादत करनी चाहिए तो वह अपनी निजी ज़िन्दगी में, भले ही अपने ख़ुदा को पूजे, लेकिन दुनिया और उसके मामलों से ख़ुदा और धर्म का कोई ताल्लुक़ नहीं। इस कलिमे की बुनियाद पर ज़िन्दगी के जिस निज़ाम की इमारत उठी है, उसमें इंसान और इंसान के ताल्लुक़ तथा इंसान अैर दुनिया के ताल्लुक़ की तमाम शक्लें ख़ुदा और धर्म से आज़ाद हैं। रहन-सहन है तो इससे आज़ाद, शिक्षा है तो इससे आज़ाद, आर्थिक व्यवसाय है तो इससे आज़ाद, क़ानून है तो इससे आज़ाद, संसद है तो इससे आज़ाद, सियासत और देश की शासन-व्यवस्था है तो इससे आज़ाद, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध हैं तो इससे आज़ाद, ज़िन्दगी के इन बेशुमार पहलुओं में जो कुछ भी तय किया जाता है, अपनी इच्छा और जानकारी के अनुसार। और इन सवालों को न सिर्फ़ नज़रंदाज़ किया जाता है बल्कि उसूली तौर से ग़लत और अंधविश्वास समझा जाता है कि इन मामलों में ख़ुदा ने भी कुछ उसूल और हिदायतें हमारे लिए तय की हैं, या नहीं। रही निजी ज़िन्दगी, तो वह भी अधर्मवादी तालीम और धर्महीन सामाजिकता की बदौलत ज़्यादातर इंसानों के मामले में सिर्फ़ दुनियावी हो कर रह गई है और होती चली जा रही है। क्योंकि अब बहुत ही कम लोगों का ज़मीर वाक़ई यह गवाही देता है कि ख़ुदा है और उसकी इबादत करनी चाहिए। ख़ास तौर से जो लोग इस संस्कृति के पोषक और कार्यकर्ता हैं, उनके लिए तो धर्म अब एक प्राइवेट मामला भी नहीं रहा। उन का निंजी ताल्लुक़ भी ख़ुदा से टूट चुका है।

दूसरे उसूल यानी क़ौमपरस्ती की शुरूआत तो पोप और रोमी सम्राट क़ैसर के विश्वव्यापी आतंक के ख़िलाफ़ प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी और इसका मतलब सिर्फ़ इतना था कि विंभिन्न राष्ट्र अपनी-अपनी राजनीति और कूटनीति के ख़ुद ही मालिक और ज़िम्मेदार हों। किसी आलमगीर

रूहानी और सियासी इक़्तिदार के हाथों में शतरंज के मुहरों की तरह न खेलें। लेकिन इस पवित्र शुरुआत से चलकर जब यह कल्पना आगे बढ़ी तो धीरे-धीरे हालत यह हो गई है कि जिस स्थान से अधर्मवादी आन्दोलन ने ख़ुदा को बेदख़ल किया था वहां क़ौमपरस्ती को ला बिठाया गया। अब प्रत्येक राष्ट्र के लिए सबसे ऊंचा अख़लाक़ी पैमाना, उसका क़ौमी स्वार्थ और उसकी राष्ट्रीय आकांक्षाएं हैं। नेकी वह है जो क़ौम के हित में हो, भले ही वह झूठ हो, बेईमानी हो, ज़ुल्म हो, भ्रष्टाचार हो, पर और कोई ऐसा काम जो पुराने धर्म और नैतिकता में सबसे बुरा पाप समझा जाता था, और पाप वह है जिस से क़ौम के स्वार्थ को नुक़्सान पहुंचे, भले ही वह सच्चाई हो, न्याय हो, हक़ों की अदायगी हो, या और कोई ऐसा काम हो जिसे कभी नैतिक ख़ूबियों में गिना जाता था। क़ौम के लोगों की ख़ूबी, ज़िन्दगी और जागृति की कसौटी यह है कि क़ौम का स्वार्थ उनसे जिस हद तक भी क़ुरबानी की मांग करे भले ही वह जान, माल, और वक़्त की क़ुरबानी हो या नैतिकता, इंसानियत और शालीनता की, बहरहाल वे इसमें संकोच न करें और संगठित और सुव्यवस्थित होकर क़ौम की बढ़ती हुई महत्वकांक्षा को पूरा करने में लगे रहें। सामूहिक कोशिशों का मक़सद अब यह है कि हर क़ौम ऐसे लोगों की बड़ी तादाद जुटाये और उनमें एकता तथा संगठन पैदा करे जिससे वे दूसरी क़ौमों के मुक़ाबले में अपनी क़ौम का झण्डा ऊंचा रखें।

तीसरे उसूल यानी जनता के प्रभुसत्ता (Sovereignty of the People) को शुरू में राजाओं और जागीरदारों के इक़्तिदार का बन्धन तोड़ने के लिए पेश किया गया था और इस हद तक बात ठीक थी कि एक व्यक्ति या एक ख़ानदान या एक वर्ग विशेष को लाखों करोड़ों इंसानों पर अपनी इच्छाएं थोपने और अपने स्वार्थ के लिए उन्हें इस्तेमाल करने का कोई हक़ नहीं है, लेकिन इस नकारात्मक (Negativ) पहलू के

साथ उसका सकारात्मक (Positive) पहलू यह था कि एक-एक देश और एक-एक इलाक़े के रहने वाले ख़ुद अपने शासक और अपने आप मालिक हैं। इसी सकारात्मक पहलू पर तरक़्क़ी करके जम्हूरियत ने जो शक्ल अख़्तियार की है। वह यह है कि हर राष्ट्र अपनी मर्ज़ी की पूरी तरह मालिक है। इसकी सामूहिक इच्छा (या व्यवहारतः उसके बहुमत की इच्छा) पर रोक लगाने वाली कोई चीज़ नहीं है। नैतिकता हो या संस्कृति, सामाजिकता हो या राजनीति– हर एक के लिए सच्चे उसूल वे हैं, जो राष्ट्रीय इच्छा के मुताबिक़ तय हों। और जिन उसूलों को राष्ट्र का जनमत रद्द करदे, वे असत्य और ग़लत हैं। क़ानून क़ौम की इच्छा पर निर्भर है। वह जो चाहे क़ानून बनाये और जिसको चाहे तोड़ दे या बदल दे। हुकूमत क़ौम की इच्छानुसार बननी चाहिए। राष्ट्र ही की इच्छाओं का उसे पाबंद होना चाहिए और उसकी सारी ताक़त राष्ट्र इच्छा पूरी करने में लग जानी चाहिए।

ये तीन उसूल जिनकी मैंने संक्षेप में व्याख्या की है, मौजूदा ज़माने की जीवन-व्यवस्था की बुनियाद हैं, और इन्हीं उसूलों पर वह अधर्मवादी लोकतन्त्रात्मक राष्ट्रीय राज्य (Secular Democratic National State) बनता है जिसे आजकल सामूहिक संगठन का सबसे ज्यादा मेयारी रूप समझा जाता है।

हमारी नज़र में यह तीनों उसूल ग़लत हैं। केवल ग़लत ही नहीं, बल्कि पूरे विवेक के साथ यह यक़ीन रखते हैं कि यही उसूल उन तमाम मुसीबतों की जड़ हैं जिनमें आज इंसानियत घिरी हुई है। हमारी दुश्मनी वास्तव में इन्हीं उसूलों से है और हम अपनी पूरी ताक़त के साथ इनके ख़िलाफ़ कोशिश करना चाहते हैं। हमें इन सिद्धान्तों पर क्या एतराज़ है और क्यों है, इसकी तफ़सील के लिए तो बड़ी लम्बी बहस की ज़रूरत है। लेकिन मैं इसे संक्षेप में थोड़े शब्दों में ज़ेहन-नशीन कराने की कोशिश करूंगा ताकि आप हमारी इस लड़ाई की अहमियत अच्छी तरह समझ

सकें और आप अंदाज़ा लगा सकें कि यह मामला इतना संगीन क्यों है और इन उसूलों के ख़िलाफ़ कोशिश करना क्यों बहुत ज़रूरी है।

सबसे पहले इस अधर्मवाद या धर्मनिर्पेक्षता को लीजिए जो इस जीवन व्यवस्था की पहली बुनियाद है। यह विचार की ख़ुदा और धर्म का ताल्लुक़ सिर्फ़ इंसान की निजी ज़िन्दगी से है, सरासर एक व्यर्थ नज़रिया है, जिसका बुद्धि और विवेक से कोई ताल्लुक़ नहीं, ज़ाहिर है कि ख़ुदा और इंसान का ताल्लुक़ दो हालतों से ख़ाली नहीं हो साकता। या तो ख़ुदा इंसान का और उस पूरी कायनात का, जिसमें इंसान रहता है, पैदा करने वाला, मालिक, और शासक है या नहीं है। अगर वह न पैदा करने वाला है, न मालिक है, न शासक, तब तो उसके साथ निजी ताल्लुक़ की भी कोई ज़रूरत नहीं। यह क़तई बेमानी बात है कि एक ऐसी ग़ैर–मुताल्लिक़ हस्ती की अकारण बन्दगी की जाये, जिसका हम से कोई ताल्लुक़ ही नहीं है और अगर वह वास्तव में हमारा और पूरी क़ायनात का पैदा करने वाला, मालिक और शासक है, तो इसके कोई मानी नहीं हैं कि उसकी अमलदारी (Jurisdiction) सिर्फ़ एक व्यक्ति की निजी ज़िन्दगी तक सीमित हो और जहां से एक और एक दो व्यक्तियों का सामूहिक संबंध शुरू होता हो, वहीं से उसके अधिकार ख़त्म हो जायें।

यह हदबंदी यदि ख़ुदा ने ख़ुद की है तो इसका कोई सबूत होना चाहिए और अगर अपने सामाजिक जीवन में इंसान ने ख़ुदा से बेपरवाह और आज़ाद हो कर स्वयं ही ख़ुदमुख़्तारी अपनाई है, तो यह अपने पैदा करने वाले, मालिक और शासक से उसकी खुली बग़ावत है। इस बग़ावत के साथ यह दावा कि हम अपनी निजी ज़िन्दगी में ख़ुदा को और उसके दीन (धर्म) को मानते हैं, सिर्फ़ वही व्यक्ति कर सकता है, जिसकी मति मारी गई हो। इससे ज़्यादा अनर्थ और ग़लत बात और क्या हो सकती है कि एक-एक इंसान अकेले-अकेले तो ख़ुदा

का बन्दा और फ़रमाबरदार हो लेकिन ये अलग-अलग बन्दे जब मिलकर एक समाज बनायें तो बन्दे न रहें। अंशों में से हर एक बन्दा और उन अंशों का समूह ग़ैर-बन्दा ! यह एक ऐसी बात है जिसकी कल्पना केवल एक पागल ही कर सकता है। फिर यह बात किसी तरह भी हमारी समझ में नहीं आती कि अगर हमें ख़ुदा की और उसकी रहनुमाई की ज़रूरत न अपनी घेरलू ज़िन्दगी में है, न मुहल्ले और नगर में, न स्कूल और कालेज में, न मण्डी और बाज़ार में, न संसद और गवर्नमेन्ट हाउस में, न हाईकोर्ट और सेक्रेटेरिएट में, न छावनी और पुलिस लाइन में, न लड़ाई के मैदान और सन्धि सम्मेलन में, तो फिर इसकी ज़रूरत है कहां ? क्यों ऐसे ख़ुदा को माना जाये और उसकी व्यर्थ में पूजा-पाठ और बन्दगी की जाये जो या तो इतना नाकारा है कि ज़िन्दगी के किसी मैदान में भी हमारी रहनुमाई नहीं करता या (मआज़ल्लाह) वह ऐसा नादान है कि, किसी मामले में भी उसकी कोई हिदायत हमें उचित और अमल करने लायक़ नहीं दिखाई पड़ती।

यह तो सिर्फ़ इस मामले का अक़्ली पहलू है अमली पहलू से देखिए तो इसके नतीजे बड़े ही ख़तरनाक हैं। हक़ीक़त यह है कि इंसानी ज़िन्दगी के जिस मामले का ताल्लुक़ भी ख़ुदा से टूटता है, उसका ताल्लुक़ शैतान से जुड़ जाता है। इंसान की निजी ज़िन्दगी हक़ीक़त में किसी चीज़ का नाम नहीं है। इंसान एक सामाजिक हस्ती और हक़ीक़त में उसकी पूरी ज़िन्दगी एक सामाजिक ज़िन्दगी है। वह पैदा ही एक माता और एक पिता के सामाजिक ताल्लुक़ से होता है। संसार में आते ही वह एक ख़ानदान में आंखें खोलता है, होश संभालते ही उसको एक समाज से, एक बिरादरी से, एक बस्ती से, एक जाति से, एक राष्ट्र या क़ौम से, एक तहज़ीबी निज़ाम तथा एक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था से ताल्लुक़ होता है। ये बेशुमार ताल्लुक़ात जो उसे दूसरे इंसानों से और दूसरे इंसानों को उससे जोड़े हुए हैं, इन्हीं के बने रहने पर एक-एक

इंसान की और सामूहिक रूप से तमाम इंसानों की भलाई निर्भर है। और यह सिर्फ़ अल्लाह ही है जो इंसान के इन सम्बन्धों के लिए ख़ालिस न्यायपूर्ण और स्थायी उसूल और सीमाऐं और हदें बताता है। जहां इंसान उसकी हिदायत से मुंह मोड़ कर ख़ुदमुख़्तार बना, फिर न तो कोई पायदार उसूल बाक़ी रहता है और न इंसाफ़ और सच्चाई, क्योंकि अल्लाह की रहनुमाई से महरूम हो जाने के बाद फिर ख़्वाहिश, अधूरे इल्म और तजुर्बे के सिवा कोई चीज़ ऐसी शेष नहीं रहती जिसकी ओर रहनुमाई के लिए रुजू किया जा सके। इसी का नतीजा है कि जिस समाज का निज़ाम अधर्मवाद या धर्मनिर्पेक्षता के उसूलों पर चलता है, उसमें इच्छाओं की बुनियाद पर हर रोज़ उसूल बनते और टूटते हैं। आप ख़ुद देख रहे हैं कि इंसानी ताल्लुक़ात के एक हिस्से में ज़ुल्म, बेइंसाफ़ी, बेईमानी और आपस में बेएतबारी घुस गई है। तमाम इंसानी मामलों पर व्यक्तिगत, वर्गविशेष से संबंधित नस्ली ख़ुदग़र्ज़ियों ने क़ब्ज़ा जमा रखा है।

दो इंसानों के ताल्लुक़ से लेकर क़ौमों के ताल्लुक़ात तक में कोई ऐसा तालमेल नहीं रहा है, जिस में टेढ़ न आ गई हो। हर एक व्यक्ति ने, हर गिरोह ने, हर वर्ग ने, हर क़ौम और हर देश ने अपने अपने अधिकार क्षेत्र में, जहां तक भी उसका बस चला है, पूरी ख़ुदग़र्ज़ी के साथ अपने फ़ायदे के उसूल, क़ायदे और क़ानून बना लिए हैं और कोई भी इस ओर ध्यान नहीं देता कि दूसरे इंसानों, गिरोहों, वर्गों और क़ौमों पर इसका क्या असर पड़ेगा। परवाह करने वाली सिर्फ़ एक ही ताक़त रह गई है और वह है जूता! जहां मुक़ाबले में जूता या जूते का अंदेशा होता है, सिर्फ़ वहीं अपनी हद से आगे फैले हुए हाथ और पैर कुछ सिकुड़ जाते हैं। लेकिन ज़ाहिर है कि जूता किसी आलिम और इंसाफ़ करने वाली हस्ती का नाम नहीं है, वह एक अंधी ताक़त का नाम है। इसलिए इसके बल पर कभी संतुलन क़ायम नहीं होता। जिसका जूता ताक़तवर होता है, वह दूसरों को केवल इतना ही नहीं सिकोड़ता

ज़ितना कि उसे सिकुड़ना चाहिए, बल्कि वह ख़ुद अपनी हद से ज़्यादा फैलने की फ़िक्र में लग जाता है। इसलिए धर्मनिर्पेक्षता और दुनियादारी का निचोड़ सिर्फ़ यही है कि जो भी इस तर्ज़े अमल को अपनायेगा, बेलगाम, ग़ैर-ज़िम्मेदार और ख़्वाहिशों का ग़ुलाम बन कर रहेगा, चाहे वह एक व्यक्ति हो, या एक समूह या एक देश और क़ौम या क़ौमों और राष्ट्रों का संघ।

अब दूसरे उसूल को लीजिए। राष्ट्रवाद (क़ौमपरस्ती) की तशरीह थोड़ी देर पहले मैं आप के सामने कर चुका हूं, अगर वह आपके ज़ेहन में ताज़ा है, तो आप ख़ुद समझ सकते हैं कि यह कितनी बड़ी लानत (अभिशाप) है, जो इस ज़माने में इंसानियत पर छायी हुई है। हमें क़ौमियत (राष्ट्रवाद) पर ऐतराज़ नहीं है, क्योंकि वह एक क़ुदरती हक़ीक़त है। हम क़ौम की भलाई चाहने के भी मुख़ालिफ़ नहीं हैं, यदि इसमें दूसरी क़ौमों के लिए बुरा चाहने का जज़्बा शामिल न हो। हमें राष्ट्र-प्रेम पर भी कोई एतराज़ नहीं है अगर वह क़ौमी तास्सुब, अपनी क़ौम (राष्ट्र) की बेजा हिमायत और दूसरों से नफ़रत की हद तक न जा पहुंचे। हम क़ौमी आज़ादी को भी ठीक ही समझते हैं, क्योंकि अपने मसलों को ख़ुद निबटाना, और अपने घर का आप ही इन्तिज़ाम करना हर क़ौम का हक़ है और एक क़ौम पर दूसरी क़ौम की हुकूमत सही नहीं है।

हक़ीक़त में, जो चीज़ आपत्तिजनक, बल्कि नफ़रत करने लायक़ है, वह है राष्ट्रवाद यानी क़ौमपरस्ती। इस क़ौमपरस्ती की कोई हक़ीक़त इसके सिवा नहीं है कि वह क़ौमी सवार्थ का दूसरा नाम है। अगर एक समाज में उस व्यक्ति का वजूद एक लानत है जो अपनी इच्छा और अपने स्वार्थ का ग़ुलाम हो और अपने फ़ायदे के लिए सब कुछ कर गुज़रने के लिए तैयार हो, अगर एक बस्ती में वह ख़ानदान एक लानत है, जिसके लोग अपने ख़ानदानी फ़ायदों के अन्धे पुजारी हों और जायज़-नाजायज़ सब तरीक़ों से सिर्फ़ अपना भला करने पर उतारू हों,

अगर एक देश में वह वर्ग लानत है, जो अपने वर्गीय स्वार्थ में अन्धा हो रहा हो और दूसरों के भले बुरे की सोचे बिना अपने फ़ायदे के पीछे पड़ जाये (जैसे ब्लैक मार्केटिंग करने वाले) तो आख़िर इन्सानियत के व्यापक दायरे में वह स्वार्थी क़ौम लानत क्यों नहीं है, जो अपने क़ौमी फ़ायदे को अपना ख़ुदा बना ले, और उसकी पूजा का यह उसूल बनाये कि "सत्य (हक़) वह है जो क़ौमी स्वार्थ के मुताबिक़ हो और असत्य (बातिल) वह है जो उसके मुताबिक़ न हो ।" आप का ज़मीर (अन्तरात्मा) ख़ुद गवाही देगा कि तमाम स्वार्थों और ख़ुदग़र्ज़ियों की तरह यह क़ौमी स्वार्थ और ख़ुदग़र्ज़ी भी निस्संदेह एक लानत है। लेकिन आप देख रहे हैं कि आज इस मौजूदा तहज़ीब ने तमाम क़ौमों को इसी लानत में जकड़ रखा है। और इसी कारण पूरी दुनिया ऐसे क़ौमी अखाड़ों में बदल गई है, जिनमें से हर अखाड़े की दूसरे अखाड़े से लाग-डांट है और दो विश्वव्यापी दंगल (युद्ध) हो चुकने के बाद अभी पसीना भी नहीं सूखा है कि तीसरे दंगल के लिए ताल ठोंके जा रहे है।

तीसरा उसूल पहले दोनों उसूलों के साथ मिलकर इस बला को पूरा कर देता है। जैसा कि मैं अभी कह चुका हूं, मौजूदा तहज़ीब में प्रजातन्त्र का मतलब है अवाम की हाकिमयत, यानी एक इलाक़े के लोगों की सामूहिक इच्छा का अपने इलाक़े में पूरी तरह ख़ुदमुख़्तार होना और उनका क़ानून के ताबेअ होना, बल्कि क़ानून का उनकी मर्ज़ी के ताबेअ होना, और हुकूमत का मंशा सिर्फ़ यह होना कि उसकी व्यवस्था और उसकी ताक़त उन लोगों की सामूहिक इच्छाओं को पूरा करने के काम आये। अब ग़ौर कीजिए कि पहले तो अधर्मवाद ने उन लोगों को अल्लाह के डर और नैतिकता के स्थायी उसूलों के बन्धन से आज़ाद करके बेलगाम, ग़ैर-ज़िम्मेदार और अपनी इच्छा का ग़ुलाम बना दिया, फिर क़ौमपरस्ती ने उनको हद से बढ़ी हुई क़ौमी ख़ुदग़र्ज़ी, अन्धे पक्षपात, और राष्ट्रीय गर्व और घमंड के नशे में बदमस्त कर दिया। अब यह प्रजातन्त्र इन्हीं

बेलगाम, नशे में चूर और नफ़्स के बन्दों की इच्छाओं को क़ानून बनाने की पूरी आज़ादी और इख़्तियार देता है तथा हुकूमत का एक मात्र उद्देश्य यह ठहरता है कि ताक़त हर उस चीज़ के हासिल करने में इस्तेमाल हो, जिसकी यह सामूहिक रूप से इच्छा करें। सवाल यह है कि इस तरह की ख़ुदमुख़्तार और प्रभुत्व-प्राप्त क़ौम की हालत आख़िरकार एक ताक़तवर और आज़ाद बदमाश की हालत से किस बात में भिन्न है ? जो कुछ एक बदमाश और दुष्ट व्यक्ति ख़ुदमुख़्तार और ताक़तवर होकर छोटे पैमाने पर करेगा, वही तो उससे बहुत बड़े पैमाने पर इस तरह की एक क़ौम करेगी। फिर जब संसार में केवल एक ही क़ौम ऐसी न हो बल्कि तमाम उन्नत और सभ्य क़ौमें इसी ढंग पर धर्मनिर्पेक्षता और प्रजातन्त्र के उसूलों पर संगठित और एक हों, तो दुनियां भेड़ियों का मैदाने-जंग न बनेगी तो और फिर क्या बनेगी ?

यही वजह है जिसकी बुनियाद पर हम उस सामूहिक व्यवस्था को फ़ासिद समझते हैं जो इस तीन उसूलों की बुनियाद पर बने। हमारी दुश्मनी अधर्मवादी, क़ौमी, जम्हूरी (प्रजातन्त्रात्मक) निज़ाम से है भले ही इसको क़ायम करने और चलाने वाले पश्चिमवासी हों या पूर्वी, ग़ैर-मुस्लिम हों या तथाकथित मुसलमान। जहां जिस देश और जिस क़ौम पर भी यह निज़ाम क़ब्ज़ा जमाएगा हम इंसानों को इससे आगाह करने की कोशिश करेंगे और उन्हें दावत देंगे कि इस निज़ाम को अपने से दूर फेंक दो।

इन तीन उसूलों के मुक़ाबले में हम दूसरे तीन उसूल पेश करते हैं और तमाम इंसानों के ज़मीर (अन्तरात्मा) से अपील करते हैं कि इन्हें जांच-परख कर ख़ुद देख लो कि तुम्हारी अपनी और सारी इंसानियत की भलाई इन पाकीज़ा उसूलों में है या उन नापाक और ख़बीस उसूलों में ?

(१) अधर्मवाद के मुक़ाबले में ख़ुदा की बन्दगी और उसका आज्ञापालन (इताअत)।

(२) राष्ट्रवाद (क़ौमपरस्ती) के मुक़ाबले में इंसानियत।

(३) प्रजातन्त्र की हाकमियत के मुक़ाबले में ख़ुदा की हाकिमियत और अवाम की ख़िलाफ़त।

पहले उसूल का मतलब यह है कि हम सब उस ख़ुदा को अपना मालिक मानें जो हमारा और सारी दुनिया का पैदा करने वाला, मालिक और हाकिम है। हम उससे आज़ाद और बेनियाज़ होकर नहीं बल्कि उसके ताबेअ फ़रमान और उसकी रहनुमाई की पैरवी करने वाले बन कर ज़िन्दगी बसर करें, हम सिर्फ़ उसकी पूजा ही न करें, बल्कि उसके हुक्मों का पालन और उसकी बन्दगी भी करें। हम सिर्फ़ अलग अलग अपने निजी मामलों ही में उसके हुक्मों और हिदायत का पालन न करें बल्कि अपनी सामूहिक ज़िन्दगी के हर पहलू में भी उसी के पाबंद हों। हमारा रहन-सहन, हमारी संस्कृति, हमारी अर्थ-व्यवस्था, हमारी शिक्षा-दीक्षा का निज़ाम, हमारे क़ानून, हमारी अदालतें, हमारी हुकूमत, हमारी जंग और सुलह, और हमारे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, सबके सब उन उसूलों और हुदूद के पाबंद हों जो ख़ुदा ने निर्धारित की हैं। हम अपनी दुनिया का समस्याओं को सुलझाने में पूरी तरह आज़ाद न हों, बल्कि हमारी आज़ादी उन हदों के अंदर ही सीमित हो, जो ख़ुदा के निर्धारित किए हुए उसूलों और सीमाओं ने तय कर दी हैं। ये उसूल और सीमायें हर हालत में हमारे अधिकारों से ऊपर और श्रेष्ठ हैं।

दूसरे उसूल का मतलब यह है कि अल्लाह की बन्दगी की बुनियाद पर जो जीवन व्यवस्था बने, उसमें क़ौम, नस्ल, वतन, रंग और भाषा की भिन्नता के आधार पर किसी तरह का तास्सुब और ख़ुदग़र्ज़ी राह न पाये। वह एक क़ौमी निज़ाम के बजाय एक उसूली निज़ाम होना चाहिए, जिसके दरवाज़े हर उस इंसान के लिए खुले हों जो उसके बुनियादी

उसूलों को मान लें और जो व्यक्ति भी उसको मान ले वह बिना भेद-भाव के, बराबरी के तमाम अधिकारों के साथ उस में शामिल हो सके। इस निज़ाम में नागरिकता (Citizenship) सिर्फ़ एक राज्य की भौगोलिक सीमाओं तक महदूद न हों, बल्कि उसूली बुनियादों पर सब के लिए आम हों। जो लोग इन उसूलों से संतुष्ट न हों या किसी वजह से उन को मानने लिए तैयार न हों, उनको मिटाने, दबाने या हज़म करने की कोशिश न हो, बल्कि वे तयशुदा अधिकारों के साथ इसी निज़ाम की हिफ़ाज़त (Protection) में रहें, और उनके लिए हर वक़्त यह मौक़ा हासिल रहे कि जब भी इन उसूलों के सही और उचित होने पर उनको इत्मीनान हो जाये, वे बराबरी के अधिकारों के साथ अपनी मरज़ी से इस निज़ाम के चलाने वाले बन सकें। यह बातें जिनको हम इंसानियत का उसूल बता रहे हैं, क़ौमियत का इंकार नहीं करती हैं, बल्कि उसे उसकी सही फ़ितरी हद में रखती हैं। इस में क़ौमी प्रेम के लिए जगह है, पर क़ौमी तास्सुब के लिए कोई जगह नहीं है। क़ौम की भलाई जायज़ है लेकिन क़ौमी स्वार्थ व ख़ुदग़र्ज़ी हराम। क़ौमी आज़ादी सर्वमान्य है और एक क़ौम पर दूसरी क़ौम के स्वार्थपूर्ण क़ब्ज़े से भी सख़्त इन्कार है, पर ऐसी क़ौमी आज़ादी हरगिज़ मान्य नहीं है जो इंसानियत को बेशुमार हदों में बांट दे। इंसानियत के उसूल की मांग यह है कि भले ही हर क़ौम अपने घर का प्रबन्ध स्वयं करे और कोई क़ौम एक क़ौम के रूप में किसी दूसरी क़ौम के मातहत न हो परन्तु वे तमाम क़ौमें जो इंसानी तहज़ीब के बुनियादी उसूलों पर सहमत हो जायें, इंसानी भलाई और तरक़्क़ी के कामों में पूरा पूरा सहयोग दें। प्रतियोगिता (Competition) के बजाय सहयोग हो। आपसी भेद-भाव, पक्षपात और तफ़रीक़ न हो। तहज़ीब और तमद्दुन और ज़िन्दगी के साधनों का पूरी आज़ादी से लेन-देन हो, और इस सभ्य जीवन व्यवस्था के तहत ज़िन्दगी गुज़ारने वाला हर व्यक्ति इस पूरी दुनिया का नागरिक हो न कि एक देश और एक क़ौम

(Nation) का। यहां तक कि वह कह सके कि –

हर मुल्क मुल्के मास्त कि मुल्के ख़ुदाये मास्त।
"प्रत्येक देश हमारा है क्योंकि वह ख़ुदा का है।"

मौजूदा हालत को हम एक क़ाबिले नफ़रत हालत समझते हैं; जिस में एक इंसान न तो ख़ुद ही अपनी क़ौम और देश के अलावा किसी दूसरी क़ौम (Nation) और देश का वफ़ादार हो सकता है, और न कोई क़ौम अपने नागरिकों के अलावा किसी दूसरी क़ौम के नागरिकों पर यक़ीन कर सकती है। इंसान अपने देश की सीमाओं के बाहर निकलते ही यह महसूस करता है कि ख़ुदा की ज़मीन में हर जगह उसके लिए रुकावटें ही रुकावटें हैं। हर मुक़ाम वह चोरों और उचक्कों की तरह शक की नज़र से देखा जाता है। हर स्थान पर पूछ-ताछ है, तलाशियां हैं, ज़बान, क़लम और सरगर्मियों पर पाबंदी है, और कहीं उसके लिए न आज़ादी है और न अधिकार। हम उसके मुक़ाबले में ऐसी विश्वव्यापी व्यवस्था चाहते हैं, जिसमें उसूलों की एकता को बुनियाद बना कर क़ौमों में महासंघ (Federation) क़ायम हो और इस परिसंघ में पूरी तरह समान और सम्मिलित नागरिकता, और पूरी तरह बे रोक-टोक आने जाने का नियम जारी हो। हमारी आंखें दोबारा यह दृश्य देखना चाहती है कि आज का कोई इब्ने बतूता अटलांटिक के तट से प्रशांत महासागर के तट तक इस तरह जाये कि कहीं वह ग़ैर और अंजनबी न हो और हर जगह उसके लिए न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट, मंत्री या राजदूत बन जाने का मौक़ा हो।

अब तीसरे उसूल को लीजिए। हम लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था के स्थान पर जम्हूरी (लोकतन्त्रीय) ख़िलाफ़त के क़ायल हैं। शख़्सी बादशाही (Monarchy) और अमीरों के इक़्तिदार तथा वर्गों के एकाधिकार के हम भी उतने ही विरोधी हैं जितना मौजूदा ज़माने का कोई बड़े से बड़ा लोकतन्त्र का मानने वाला हो सकता है।

सामूहिक जीवन में तमाम लोगों को बराबर के हक़, समान हैसियत व पद और अवसरों को सब के लिए खुला रखने के लिए हम भी उतना ही ज़ोर देते हैं जितना पश्चिमी लोकतंत्र का कोई बड़े-से-बड़ा समर्थक दे सकता है। हम भी इस बात को मानते हैं कि हुकूमत का इंतिज़ाम और हुक्मरानों व शासकों का चुनाव तमाम नागरिकों की आज़ाद मर्ज़ी और राय से होना चाहिए। हम भी उस जीवन-व्यवस्था के कट्टर विरोधी हैं जिस में लोगों के लिए राय व्यक्त करने की आज़ादी, सम्मेलन की आज़ादी और दौड़ धूप व काम की आज़ादी न हो, या जिसमें पैदाईश, नस्ल और वर्गों की बुनियाद पर कुछ लोगों के लिए ख़ास अधिकार और कुछ दूसरे लोगों के लिए ख़ास रुकावटें हों। ये बातें जो लोकतन्त्र का मूल सार हैं, इनमें हमारे लोकतन्त्र और पश्चिमी लोकतन्त्र में कोई फ़र्क़ नहीं है। इनमें से कोई चीज़ ऐसी नहीं है जो पश्चिम वालों ने हमें सिखायी हो। हम इस लोकतन्त्र को उस वक़्त से जानते हैं और दुनिया को इसका बेहतरीन और अमली नमूना दिखा चुके हैं जबकि पश्चिम के लोकतन्त्र-वादियों के पैदा होने में अभी सैकड़ों वर्ष की देरी थी। दरअसल हमें इस नवोदित जम्हुरियत से जिस मामले में मतभेद और भारी मतभेद है, वह यह है कि वह अवाम की निरंकुश बादशाहत का उसूल पेश करता है और हम इसको हक़ीक़त की नज़र से ग़लत और नतीजे के एतबार से विनाशकारी समझते हैं। हक़ीक़त यह है कि बादशाही सिर्फ़ उसका हक़ है जिसने लोगों को पैदा किया है, जो उनकी परवरिश और पालन-पोषण का सामान जुटा रहा है, जिसके सहारे पर उनका और सारी दुनिया का वजूद क़ायम है और जिसके ताक़तवर क़ानून के बन्धन में कायनात की एक-एक चीज़ जकड़ी हुई है। उसकी हक़ीक़ी और वास्तविक बादशाही में जिस सत्ता का भी दावा किया जाएगा, भले ही वह एक व्यक्ति या एक ख़ानदान की सत्ता हो या एक क़ौम और उसके अवाम की, बहरहाल, वह एक ग़लतफ़हमी के सिवा कुछ

भी न होगा और उस ग़लतफ़हमी की चोट हक़ीक़ी बादशाह पर नहीं बल्कि उस मूर्ख दावेदार ही पर पड़ेगी, जिसने अपनी क़द्र ख़ुद ही न पहचानी। इस हक़ीक़त की मौजूदगी में सही भी यही है और नतीजों की नज़र में इंसान की भलाई भी इसी में है कि ख़ुदा को हाकिम मान कर इंसानी ज़िन्दगी का निज़ामे हूकूमत ख़िलाफ़त व प्रतिनिधित्व के नज़रिए पर बनाया जाए। निसंदेह यह ख़िलाफ़त लोकतंत्रीय होनी चाहिए। जनता की राय ही से हुकूमत के अमीर (अध्यक्ष) या प्रधान व्यवस्थापक का चुनाव होना चाहिए। उन्हीं की राय से सलाहकार परिषद (कैबिनेट) का चयन होना चाहिए। उन्हीं के मश्विरे से हुकूमत की सारी व्यवस्था चलनी चाहिए और उनको टीका-टिप्पणी तथा आलोचना का खुला अधिकार होना चाहिए, लेकिन यह सब कुछ इस एहसास और शऊर के साथ होना चाहिए कि देश अल्लाह का है, हम मालिक नहीं बल्कि नायब हैं और हमें हर काम का हिसाब असल मालिक को देना है। वे अख़्लाक़ी उसूल, क़ानूनी हिदायतें और हदें अपनी जगह अटल होनी चाहिए जो ख़ुदा ने हमारी ज़िन्दगी के लिए तै कर दी हैं। हमारी पार्लियामेंट का बुनियादी उसूल यह होना चाहिए कि जिन मामलों में अल्लाह ने हमें हिदायतें (Guidelines) दी हैं उनमें हम ख़ुद क़ानून नहीं बनायेंगे बल्कि अपनी ज़रूरतों के लिए ख़ुदा की हिदायातों से तफ़सीली क़ानून हासिल करेंगे और जिन मामलों में ख़ुदा ने हमें हिदायतें नहीं दी हैं, उनमें हम यह समझेंगे कि ख़ुदा ने ख़ुद ही हम को काम करने की आज़ादी दी है। इसलिए सिर्फ़ इन्हीं मामलों में हम आपसी सलाह मशवरे से क़ानून बनायेंगे पर ये क़ानून ख़ास तौर से उस सामूहिक ढांचे के मिज़ाज से एकरुपता रखने वाले होंगे जिससे ख़ुदा की उसूली हिदायतों ने हमारे लिए बना दिया है। फिर यह ज़रूरी है कि संस्कृति और राजनीति की इस पूरी व्यवस्थता की बागडोर उसका इन्तिज़ाम उन लोगों के सुपुर्द हो, जो ख़ुदा से डरने वाले, उसकी आज्ञापालन करने वाले और हर

काम में उसकी ख़ुशी चाहने वाले हों, जिनकी ज़िन्दगी गवाह हो कि वे ख़ुदा के सामने अपनी पेशी और जवाबदेही का यक़ीन रखते हैं, जिनकी पब्लिक और प्राइवेट दोनों तरह की ज़िन्दगी से यह सबूत मिले कि वे बेलगाम घोड़े की तरह नहीं हैं जो हर खेत में चरता और हर सीमा को लांघता फिरता हो, बल्कि एक ख़ुदाई ज़ाब्ते की रस्सी और एक ख़ुदापरस्ती के खूंटे से बंधे हुए हैं और उनकी सारी दौड़-धूप उसी हद तक सीमित है जहां तक वह रस्सी उन्हें जाने देती है।

सज्जनो ! ये तीनों उसूल जिनकी बहुत ही संक्षेप में आपके सामने व्याख्या की है, मौजूदा तहज़ीब की क़ौमपरस्त अधर्मवादी लोकतांत्रिक शासन के मुक़ाबले में एक ख़ुदापरस्त इंसानी जम्हूरी (लोकतांत्रिक) ख़िलाफ़त क़ायम करना चाहते हैं और इसी को क़ायम करना हमारा लक्ष्य है। यह बात तो आप एक नज़र डालते ही जान सकते हैं कि इन दोनों निज़ामों में खुला मतभेद है। अब यह फ़ैसला आपके अपने ज़मीर पर निर्भर है कि इनमें से कौन बेहतर और अच्छा है ? किसमें आप की कामियाबी है ? किसके क़ायम करने की आपको कामना रहनी चाहिए ? और किसके क़ायम करने और क़ायम न करने में आपकी ताक़त का इस्तेमाल होना चाहिए ?

जहां तक मुसलमानों का ताल्लुक़ है, उनसे तो मैं साफ़ कहता हूं कि मौजूदा ज़माने की बेदीन क़ौमी जम्हूरियत तुम्हारे धर्म और ईमान के क़तई ख़िलाफ़ है। जिस इस्लाम के नाम पर तुम अपने आपको मुसलमान कहते हो, उसकी रूह इस निज़ाम की रूह से, उसके बुनियादी उसूल इसके बुनियादी उसूलों से, और उसका हर हिस्सा इसके हर हिस्से से टकराता है। इस्लाम और यह निज़ाम एक दूसरे से कहीं भी समझौता नहीं करते हैं। जहां यह निज़ाम सत्ता में होगा वहां इस्लाम एकदम बेजान होगा और जहां इस्लाम का इक़्तिदार और शासन होगा, वहां इस निज़ाम के लिए कोई जगह नहीं होगी। तुम अगर वाक़ई उसी इस्लाम पर ईमान

रखते हो, जिसे क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) लाये थे तो तुम्हारा फ़र्ज़ है कि जहां भी तुम हो, इस क़ौमपरस्त बेदीन जम्हूरियत (Secular Democracy) के मुक़ाबले में ख़ुदापरस्ती की बुनियाद पर इंसानी ख़िलाफ़त क़ायम करने के लिए जद्दोजहद करो। ख़ास तौर से जहां तुम एक क़ौम (Nation) की हैसियत से इक़्तिदार में हो, वहां तो अगर तुम्हारे अपने हाथों से इस्लाम के असल निज़ाम की जगह पर वह बेदीन निज़ाम क़ायम हो तो अफ़सोस है तुम्हारी इस झूठी मुसलमानी पर जिसका नाम लेने के तुम इतने बड़े दावेदार और जिस का काम करने में तुम इतने जी चोर हो।

इस बारे में, बहस से अलग हट कर, अपने मुसलमान भाइयों से मुझे एक बात और भी कहनी है। कुछ लोग आपको इस ग़लतफ़हमी में डाल रहे हैं और शायद ख़ुद भी इस धोखे में हैं कि सत्ता तो एक इनाम है जो नमाज़ पढ़ने और नेकियां करने के बदले में ख़ुदा की ओर से मिला करता है। इसको हासिल करने के लिए की गई कोशिश सिर्फ़ दुनिया परस्ती, और इसको लक्ष्य बनाना इस्लाम के ख़िलाफ़ है। ये बातें जो लोग करते हैं, उन्होंने इस मामले को समझने की सिरे से कोई कोशिश ही नहीं की है। और अगर ये बुरा न मानें, तो मैं कहूंगा कि वे समझना चाहते भी नहीं हैं। क्योंकि इस तरह उनकी ज़िन्दगी के वे मज़े किरकिरे हो जायेंगे जो मौजूदा निज़ाम की हुकूमत में उन्हें हासिल हैं या हासिल होने का लालच है। ये लोग इस सारे मामले को इनाम के पहलू से देख रहे हैं और फ़र्ज़ का पहलू उनकी नज़र से ओझल है। मैं कहता हूं कि बेशक अल्लाह की ख़िलाफ़त का क़ायम हो जाना एक इनाम है लेकिन इसको क़ायम करने की कोशिश करना एक फ़र्ज़ भी तो है ताकि इस शैतानी ख़िलाफ़त के स्थान पर अल्लाह की सच्ची ख़िलाफ़त क़ायम हो, जिस में बुराइयां दबें और नेकियां परवान चढ़ें। तुम फ़र्ज़ से जी चुराते हो और इनाम की उम्मीद रखते हो ?

यह बकवास तुम्हीं को मुबारक हो।

रहे ग़ैर-मुस्लिम सज्जन ! तो उन ही के भले के लिए उनसे मेरी यह गुज़ारिश है कि कृपया उसूल के मामले में उन पक्षपातों के पर्दे अपने दिलों पर न डालिये जो पिछले इतिहास और आज की कशमकश की वजह से हमारे और आपके बीच पैदा हो गये हैं। उसूल किसी क़ौम की पैतृक जायदाद नहीं होते, न उनपर किसी क़ौमियत का ठप्पा लगा होता है। वे अगर सच्चे और फ़ायदेमंद हैं तो सारी इंसानियत के लिए सच्चे और मुफ़ीद हैं और अगर ग़लत हैं तो सभी के लिए ग़लत हैं, बिना इस की परवाह किये हुए कि कौन उन्हें पेश कर रहा है और किस भाषा में उन्हें पेश किया गया है। मिसाल के तौर पर स्वास्थ्य रक्षा संबन्धी उसूलों, औषधि विज्ञान के उसूलों, व्यापार, उद्योग धन्धे और कृषि के उसूलों में, विज्ञान तथा दूसरे ज्ञान-विज्ञान के उसूलों में यह सवाल सिरे से पैदा ही नहीं होता कि वे अमुक राष्ट्र और अमुक देश की चीज़ें हैं, इसलिए दूसरे उनसे तास्सुब और नफ़रत रखें। आप जिस सही उसूल को भी मानने में पक्षपात से काम लेंगे, तो अपना ही नुक़्सान करेंगे। ठीक यही मामला अख़्लाक़ी, तहज़ीबी, समाजी, राजनीतिक और आर्थिक उसूलों का भी है। हक़ीक़त में यह भी क़ौम और नस्ल से परे की चीज़ें हैं। इनको भी इनके गुण-दोष (Merits & Demerits) के मुताबिक़ मानना या रद्द करना चाहिए। आप सच्चे उसूल अपनायेंगे तो अपना ही भला करेंगे, किसी पर कोई एहसान न करेंगे। ग़लत उसूलों पर चलेंगे तो अपना ही नुक़्सान करेंगे, किसी का कुछ न बिगाड़ेंगे।

आपने ख़ुद भी दुनिया के दूसरे उसूलों के बारे में पक्षपात और तास्सुब से काम नहीं लिया है। यह अधर्म, यह क़ौमपरस्ती, यह पश्चिमी लोकतंत्र, आपके पास उन अंग्रेज़ों ही के ज़रिये से तो आई हैं जो दो सौ वर्ष आप पर ज़ालिमाना हुकूमत करते रहे और जिनके ख़िलाफ़ चालीस पचास

वर्ष आप आज़ादी की लड़ाई लड़ते रहे। फिर उन दुश्मनों के लाये हुए उसूलों को मानने में आप ने क्यों पक्षपात से काम नहीं लिया ? यह समाजवाद और साम्यवाद जिसकी ओर आप में से बहुत से लोग लपक रहे हैं, जर्मनी के यहूदी दिमाग़ से निकले और रूस में पले बढ़े हैं। इन क़ौमों से आख़िर आप का क्या ताल्लुक़ है ? फिर आपने इन्हें विदेशी क्यों न समझा ? अगर उनके मामले में आप पक्षपाती नहीं हो सकते हैं और उसूल को उसूल के ही रूप में देख सकते हैं, तो कोई वजह नहीं कि जो उसूल हम आपके सामने पेश कर रहे हैं, उनपर ग़ौर करने में यह विचार आप की सोच-विचार को उलझाये कि इनको पेश करने वाले लोग ऐसी क़ौम के व्यक्ति हैं जिससे आप कुछ तारीख़ी शिकायतें रखते हैं या जिसके साथ आज आपकी लड़ाई ठनी हुई है।

हम दलीलों के साथ उन ग़लत उसूलों पर आलोचना कर रहे हैं, जो हमारी राय में इंसानियत को तबाह करने वाले हैं और उनके स्थान पर वे उसूल पेश कर रहे हैं, जिनमें हमें अपनी, आपकी और सारी इंसानियत की कामियाबी दिखाई देती है। आप खुले दिल से देखिए कि आपका अपना भला वास्तव में किन उसूलों के मानने में है। ख़ुद परख कर देख लीजिए कि ख़ुदापरस्ती बेहतर है या बेदीनी, क़ौम परस्ती बेहतर है या इंसानियत, अवाम की निरंकुशता बेहतर है या ख़ुदा की बादशाही के तहत जम्हूरी ख़िलाफ़त ? इंसानी मामलों की बागडोर ख़ुदा से बेख़ौफ़ लोगों के हाथों में रहना बेहतर है या ऐसे लोगों के हाथों में जो ख़ुदा का डर रखने वाले हों। अगर आपका दिल गवाही दे कि यह चीज़ जो हम पेश कर रहे हैं, ज़्यादा सही या नतीजों के एतबार से ज़्यादा मुनासिब है तो उसे मान कर आप अपना ही भला करेंगे।

इसके बाद सिर्फ़ एक अमली (व्यावहारिक) सवाल सुलझाना रह जाता है और वह यह है कि ख़ुदा की बन्दगी के आधार पर क़ायम इस निज़ाम को चलाने के लिए हिदायतें कहां से हासिल की जायें ?

वे ख़ुदाई क़ानून और संविधान कौन से हैं, जिसपर हम अपने राज्य की नीव रखें ? देखने में यह समस्या बड़ी जटिल है, क्योंकि जितनी आसानी से ख़ुदाई हुकूमत या राम राज्य या (Kingdom of God) के सादा तसव्वुर पर लोग एक राय हो सकते हैं उसी आसानी से किसी क़ानून और दस्तूर को ख़ुदाई क़ानून और दस्तूर मान लेने पर सहमति नहीं हो सकती। लेकिन यह जटिलता इतनी कठिन नहीं है कि इस को किसी तरह सुलझाया ही नहीं जा सकता।

अब यह बात लगभग तय है कि देश का बटवारा होकर रहेगा। एक हिस्सा मुस्लिम बाहुल्य के मातहत होगा और दूसरा हिस्सा ग़ैर-मुस्लिम बहुसंख्यक के। पहले हिस्से में हम कोशिश करेंगे कि जनमत हासिल करके उस क़ानून और दस्तूर पर राज्य की नींव रखें, जिसे हम मुसलमान ख़ुदाई क़ानून और दस्तूर मानते हैं। ग़ैर-मुस्लिम भाई वहां हमारा विरोध करने के बजाय हमें काम करने का मौक़ा दें और देखें कि एक सेकुलर क़ौमी जम्हूरियत के मुक़ाबले में यह ख़ुदापरस्त जम्हूरी ख़िलाफ़त जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की लाई हुई हिदायत पर क़ायम होगी, कहां तक ख़ुद पाकिस्तान के निवासियों के लिए और कहां तक सारी दुनिया के लिए रहमत और बरकत साबित होती है। दूसरे हिस्से में आपकी बहुसंख्या और हमारी अल्पसंख्या होगी। वहां हम आपसे गुज़ारिश करेंगे कि ख़ुदा के लिए दुनिया की बिगड़ी हुई और भ्रष्ट क़ौमों से वे उसूल न लीजिए, जिसकी वजह से वे ख़ुद भी ख़राब और बरबाद हो रहे हैं और दुनिया को भी ख़राब कर रहे हैं। इन की जगह पर आप सबसे पहले ये तीन उसूल मान लीजिए जिनको हर ज़माने में ख़ुदा के नेक बन्दे लेकर आये हैं, जिन्हें आप के पूर्वज़ भी इसी तरह पेश करते रहे, जिस तरह हमारे बुज़ुर्गों ने पेश किया था। फिर अपने बुज़ुर्गों की शिक्षाओं में खोजिए कि इन उसूलों के मुताबिक़ एक स्टेट—वर्तमान युग की एक प्रगतिशील स्टेट—का निज़ाम चलाने के लिए कोई तफ़्सीली हिदायत मिलती

है या नहीं । रामचन्द्रजी, कृष्णजी , बुद्ध महाराज, गुरुनानक और दूसरे तमाम ऋषियों और मुनियों की तालीम और उनकी जीवनी का जायज़ा लीजिए। वेदों, पुराणों, शास्त्रों और ग्रन्थों को देखिए। अगर इनमें कोई हिदायत आपको मिले, तो हम कहेंगे कि आप भारत का निज़ामे-हुकूमत इसी पर क़ायम कीजिए और हमसे वही बरताव कीजिए, जो आप का धर्म हमारे लिए उचित ठहराता है। हम इस निज़ाम में रुकावट नहीं बनेंगे। उसे काम करने का पूरा मौक़ा देंगे और बिना किसी पक्षपात के यह देखेंगे कि आप, ख़ुदापरस्ती, इंसानियत और ख़ुदापरस्त जम्हूरियत की जो अमली शक्ल पेश करते हैं, वे कहां तक भारत के लिए और कहां तक दुनिया के लिए रहमत और बरकत साबित होती हैं, लेकिन अगर आप अपने यहां ऐसी कोई तफ़सीली हिदायत नामा न पायें तो इसका मतलब यह नहीं है कि उसे ख़ुदा ने आप के यहां भेजा नहीं था, बल्कि इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि अपने लम्बे ज़माने की तारीख़ के इंक़िलाबों से इसे या इसके बड़े हिस्से को आप खो बैठे हैं। वही चीज़ उस ख़ुदा की भेजी हुई हम आप के सामने पेश करते हैं। इससे आप संकोच न करें। यह आपकी खोई हुई चीज़ है, एक दूसरे ज़रिये से आपके पास वापस आई है। आप इसे पहचानने की कोशिश करें, इसे जांचें, परखें और बरत कर देखें कि इस से हक़ीक़त में आप की और दुनिया की कामयाबी है या नहीं।